आलोचना : स्थिति एवं गति

''साहित्य के क्षेत्र में किसी कृति को पढ़कर उसके गुण दोषों का विवेचन कर उसके संबंध में मत प्रकट करना आलोचना कहलाता है।'' आलोचना काव्य, उपन्यास, नाटक, निबंध आदि किसी भी विधा की हो सकती है। यहाँ तक कि आलोचना की भी आलोचना की जा सकती है। जिस प्रकार साहित्य जीवन की व्याख्या है आलोचना उस व्याख्या की व्याख्या है। किसी साहित्य की आलोचना करते समय हमें लेखक और उसकी कृति के अभिप्राय को समझना चाहिए तब उसके संबंध में अपना कोई विचार रखना चाहिए। आलोचना के माध्यम से किसी सहित्यकार की कृति की विस्तृत व्याख्या कर उसके संबंध में अपना मत स्थिर कर सकते हैं परंतु पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार आलोचक का कार्य केवल कृति की व्याख्या करना है मत प्रकट करना नहीं क्योंकि उसके दिए गए मत से दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। जिससे आगे चलकर आलोचना के काम में बाधा पड़ती है परंतु यह मत ठीक नहीं जान पड़ता। किसी कृति की व्याख्या करने के लिए आलोचक को उस कृति का अध्ययन कर उस कृति के ऊपरी गुण–दोषों को छोड़कर भीतरी भावों तक पहुँचना पड़ेगा। इस तरह विषय, भाव और कला आदि की दृष्टि से उस कृति को परखकर उसके गुण–दोषों की जाँच कर जब आलोचक व्याख्या करेगा तब उसके कृति के गुण–दोष अपने आप ही पाठक वर्ग तक पहुँच जाएँगे। आलोचक आलोच्य ग्रंथ को देखकर भी उसकी आलोचना कर सकता है, अन्य ग्रंथों से तुलना भी कर सकता है। आवश्यकता पड़ने पर वह ऐतिहासिक, सामाजिक, नैतिक और साहित्यिक दृष्टि से भी विचार कर स्वयं उस कृति तथा कृतिकार के अभिप्राय को समझकर अन्य को समझा सकता है। अपनी रुचि के अनुसार उस कृति के संबंध में किसी प्रकार का निर्णय नहीं करना चाहिए। ''आलोचना का प्रथम कर्तव्य है कि वह सर्जक के शब्दों की काया में प्रवेश करे, उसके आंतरिक अर्थों का अन्वेषण करे और फिर रचना के बारे में जो लिखे या कहे, वह गुणधर्मी को विमर्शमूलक हो, व्यक्ति निरपेक्ष हो और पूर्वग्रहों का जखीरा न हो।''[1] अर्थों का अन्वेषण करना आलोचक का प्रथम कर्त्तव्य है।

डॉ. जॉनसन के अनुसार, ''आलोचना का कर्त्तव्य न तो किसी रचना का अवमूल्यन करना है और न आंशिक विवेचन द्वारा उसे गरिमा मंडित

करना। उसका कार्य तो विवेक के आलोक में जो दिखाई दे, उसका उद्‌घाटन करना और सत्य के निर्देश में निर्णय हो, उसका प्रस्तुतिकरण करना है।'' आलोचना का अंकुश लोगों को मनमाने रास्ते पर चलने से रोकता है और उन्हें ठीक मार्ग पर चलने के लिए बाध्य करता है। संसार में जब कोई नया आंदोलन अथवा नई बात उत्पन्न होती है। तब उसके संबंध में बहुत कुछ विरोध, टीका–टिप्पणी और आलोचना आदि होती है। परंतु धीरे–धीरे आलोचना अपने आप को नए विचारों और आदर्शों के अनुकूल ढाल लेता है, और उन्हीं नए विचारों और सिद्धांतों के आधार पर नई बातें निकालकर नए ढंग से लोगों को उनका अर्थ बतलाने लगते हैं। अतः आलोचना साहित्यकार के लिए पथप्रदर्शक या सहायक का कार्य करती है। आधुनिक युग में कई आलोचकों ने आलोचना को नई ऊँचाई तक पहुँचाया है। इस विषय का विश्लेषण करते हुए सभी आलोचकों पर प्रकाश डालना संभव नहीं है। अतः प्रतिनिधि आलोचकों के माध्यम से आलोचना की गति एवं स्थिति पर प्रकाश डालने का प्रयास है।

आधुनिक काल में भारतेंदु युग से ही काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी और आलोचना आदि विधाओं की शुरुआत हुई। इन साहित्य रुपों के विवेचन हेतु नए प्रतिमानों की आवश्यकता हुई। काव्य समीक्षा के लिए तो काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों को ही अपनाया गया परंतु गद्य साहित्य हेतु जो समीक्षा सिद्धांत निर्धारित हुए उन पर पाश्चात्य समीक्षा का प्रभाव था। इनकी आलोचना में समन्वयवादी प्रवृत्ति दिखाई देती है। अर्थात भारतीय और पाश्चात्य दोनों विचारों का सम्मिश्रण भारतीय रसपद्धति और पाश्चात्य चरित्र वैशिष्ट्य दोनों का समन्वय 'भारतेंदु नाटकावली' में मिलता है। भारतेंदु युगीन समीक्षकों का कार्य अपेक्षाकृत व्यापक और खंडन–मंडन का था। उन्होंने राष्ट्रीयता पर बल देते हुए अंग्रेज और फ्रांसीसी समीक्षकों के सांप्रदायिक कथनों का डटकर विरोध किया। इन्होंने सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों प्रकार की आलोचनाएँ की, लेकिन प्रधानता प्राचीन काव्य शास्त्र की ही रहीं।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की आलोचना ने आलोचना के क्षेत्र में नई स्थापना की। इन्होंने पाश्चात्य साहित्य और उसके प्रभाव को स्वीकार करते हुए भी अपने सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा के लिए परंपरा वादी सिद्धांतों के अनुशीलन की ओर उन्मुख हुए। वे सैद्धांतिक और

व्यावहारिक दोनों प्रकार की आलोचना द्वारा नवीन विषयों और शास्त्र सम्मत सिद्धांतो की प्रस्तुति की। 'सरस्वती' में प्रकाशित 'कवि और कविता' नामक निबंध उनकी सैद्धांतिक समीक्षा का निकष है।

द्विवेदी युग के समीक्षकों में दूसरा स्थान मिश्रबंधुओं का है। डॉ. निर्मला जैन के अनुसार, ''मिश्रबंधु की आलोचना दृष्टि मुख्य रुप से कृतिनिष्ठ थी और मूल्यांकन के निमित्त वे साहित्यिक प्रतिमानों को ही प्राथमिकता देते थे। परंतु राजनीतिक परिवर्तनों के कारण बदलते सामाजिक वैचारिक संदर्भों की ओर भी वे यथासंभव ध्यान देते चलते थे।''[2] इनके दो आलोचनात्मक ग्रंथ है–'हिन्दी नवरत्न' और 'मिश्रबंधु विनोद'। 'हिन्दी नवरत्न' में उन्होंने 'बिहारी' की अपेक्षा 'देव' को अधिक महत्व देकर तुलनात्मक समीक्षा का सूत्रपात किया।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल प्रयोगात्मक एवं सैद्धांतिक आलोचना का समन्वय करते हुए अपने रसवादी सिद्धांत के आधार पर तुलसी, सूर और जायसी की कृतियों का मूल्यांकन किया। ''उनका रसवादी सिद्धांत जीवन की क्रिया भूमि, काव्य की भावभूमि और समीक्षा की विचारभूमि तीनों में समन्वित है। आ. शुक्ल को भारतीय 'रसवाद' के अनुरुप जितने समीक्षा सिद्धांत मिले हैं, उनका अनुप्रवेश उन्होंने अपनी आलोचना में किया है।''[3] उन्होंने 'रसवाद' की आध्यात्मिक भूमिका मनोवैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करते हुए युगानुरुप परिभाषित करने का प्रयास किया है इसलिए ''इनके समीक्षा सिद्धांत के तीन आयाम दिखाई पड़ते हैं :–

1) विस्तृत अध्ययन

2) सूक्ष्म अन्वीक्षण बुद्धि

3) मर्म – ग्राहिणी प्रज्ञा।''[4] आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार ''हमें दूसरे देशों के साहित्य का अवलोकन करते हुए अपने साहित्य की समीक्षा करनी चाहिए।''[5] वे भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धांत वहीं तक स्वीकार करते हैं जहाँ तक रसानुभूति के अनुकूल है। वे रसानुभूति और सौंदर्यानुभूति को एक ही मानते हैं। वे केवल रुपाकृति सौंदर्य की ही नहीं वरण कर्म सौंदर्य, मनोवृत्ति सौंदर्य अथवा शील सौंदर्य की भी चर्चा करते हैं। वे लोकमंगल अथवा लोकसंग्रह में ही सौंदर्य की सत्ता का स्वीकार करते हैं। इसलिए उन्होंने छायावादी काव्य को शैलीमात्र कहा है।

छायावादी कवियों के प्रभावस्वरुप जो आलोचक आलोचना क्षेत्र में आए उनमें आ. नंददुलारे वाजपेयी प्रमुख है। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि, ''विकासशील मानव–जीवन के महत्वपूर्ण या मार्मिक अंशों की अभिव्यक्ति ही साहित्य की मोटी परिभाषा हो सकती है।''[6] उनकी दृष्टि में मानव जीवन ही साहित्य या काव्य की वस्तु है तथा कल्पना उसका नियामक तत्व। वे सौंदर्य को शिव तत्व मानते हैं। इनकी आलोचना पद्धति सौंदर्यवादी जीवन दृष्टि को लेकर विकसित हुई। अनुभूति और अभिव्यक्ति के विवेचन को अपनी आलोचना पद्धति का प्रधान अंग बनाया। उन्होंने साहित्य का मूल्यांकन कृति विशेष की अनुभूति तथा अभिव्यक्ति के सौष्ठव के आधार पर किया। आलोचना के प्रतिमान के रुप में सौंदर्य की सहज चेतना को ही प्रतिष्ठित किया। शैली की दृष्टि से उनकी समीक्षा व्याख्यात्मक और विवेचनात्क है। आलोचना जगत में आ. नंददुलारे वाजपेयी और आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी स्वच्छतावादी आलोचना प्रवाह के आलोचक है किंतु वाजपेयी सौंदर्यवादी है और आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी मानवातावादी।

आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी स्वच्छंतावादी आलोचक है। इनका मूल सिद्धांत 'मानवतावादी जीवन दर्शन' है। संपूर्ण जीव जगत उनके मानवतावादी सिद्धांत के आधार हैं उनका मानवतावादी सिद्धांत मनुष्यता के विकास में संघर्ष की अपेक्षा सहयोग को महत्व देता है। उनका कहना है कि ''मनुष्य के लिए ही साहित्य, दर्शन, इतिहास, राजनीति आदि बनते हैं।''[7] उनका समीक्षा कर्म दृष्टि की मौलिकता, इतिहास और सामाजिक, सांस्कृतिक उपकरणों को लेकर विकसित हुई है। साहित्य के बारे में उनकी मान्यता है कि, ''मनुष्य ही मुख्य है, बाकी सब बाते गौण। अलंकार, छंद, रस का अध्ययन मनुष्य को समझाने के साधन है। वे स्वतः अपने आप में कोई स्वतंत्र चरम मान नहीं है।''[8] हिन्दी समीक्षा को सांस्कृतिक अर्थवत्ता और अतीत की मूल चेतना के साथ जोड़ने का श्रेय आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी को दिया जा सकता है। उनकी समीक्षा पद्धति अतीत के सांस्कृतिक अवदान के विशेष संदर्भ में साहित्य का मूल्यांकन करती है। जिस इतिहास बोध और सांस्कृतिक चिंतन के साथ उन्होंने हिन्दी साहित्य की रचनामक परंपराओं का विश्लेषण किया है। उनके साहित्य और जीवन में सामंजस्य की विलक्षण प्रस्तावना है।

डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त वैज्ञानिक समीक्षा पद्धति के सशक्त आलोचक है। उनका चिंतन मौलिक, गंभीर एव संतुलित है। उन्होंने अपने आलोचना कर्म से सहित्य को नई दिशा दी है। उनकी वैज्ञानिक समीक्षा पद्धति साहित्यिक कृतियों का सम्यक विश्लेषण, संतुलित बोध बृहत सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में उनके मर्मस्थल तक पहुँचने के लिए अत्यंत उपादेय है। उनके अनुसार किसी भी कृति का सृजन कर्ता की प्राकृतिक सृजन शक्ति है। जो वातावरण, युग, चेतना एवं विभिन्न प्रकार के परिस्थितिनुसार प्रभावित होती है। अतः स्रष्टा में मानसिक द्वंद्व जन्मता है। इनके अनुसार, ''कृति में व्यक्ति और समाज की क्रिया प्रतिक्रिया का फलित होना आवश्यक है। तत्पश्चात संतुलन की स्थिति आती है।''[9] साहित्य की किसी भी कृति को इस आधार पर कसना वैज्ञानिक समीक्षा है। इनका व्यावहारिक पक्ष उनके ग्रंथों में भी दिखाई देता है। वे आधुनिक वैज्ञानिक समीक्षा के सूत्रधार है।

डॉ. नग्रेंद्र ने भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य परंपराओं के गंभीर अध्ययन, परिपक्व चिंतन, सूक्ष्म विश्लेषणक्षमता के आधार पर समीक्षा चिंतन के उपकरणों को समन्वित कर नए शास्त्रीय आधारों की परिकल्पना की। ''इनकी आलोच्य कृतियों रसवादी, सौष्ठववादी, मनोविश्लेषणवादी, सैद्धांतिक और व्यावहारिक आदि समस्त आलोचना पद्धतियों का सुंदर समन्वय दृष्टिगोचर होता है।''[10] पांडित्य और आलोचनात्कता का अद्‌भूत समन्वय करते हुए न केवल व्यावहारिक मीमांसा के असंख्य प्रयास किए अपितु अनेक प्रश्नों का समाधान करने का भी प्रयास कर काव्यशास्त्र संबंधी चिंतन को भी नया आयाम दिया। एक ओर उन्होंने स्वच्छंतावादी साहित्य की मीमांसा तत्संबंधी समीक्षा निकषों पर की, तो दूसरी ओर मनोविश्लेषणवादियों की उपलब्धियों के सहारे रस शास्त्र की नयी व्याख्या की। अध्ययन की गंभीरता, व्यापकता, वैचारिक प्रौढ़ता और अभिव्यक्ति की प्रांजलता ने मिलकर डॉ. नगेंद्र की समीक्षात्मक पद्धति को आकर्षक वैशिष्टय प्रदान किया। डॉ. नगेंद्र ने अपने आलोचनात्मक चिंतन द्वारा हिन्दी साहित्य शास्त्र को औदात्य प्रदान किया है।

मार्क्सवादी दृष्टिकोण से समीक्षा करनेवालों में विशेष उल्लेखनीय है–रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान, प्रकाशचंद्र गुप्त, अमृतराय, नरेंद्र शर्मा, शमशेर बहादुर सिंह एवं डॉ. देवराज प्रभृति। परंतु इन सभी मार्क्सवादी आलोचकों में रामविलास शर्मा की दृष्टि सर्वाधिक पैनी और

धारदार है। विचारों के स्तर पर कहीं भी समझौतावादी न होकर निर्भिक आलोचक है। मार्क्सवादी दर्शन की सारी मूलभूत विशेषताओं को अंगीकार करते हुए आलोचना को अपना क्षेत्र बनाया। विद्वता, चिंतन, संवेदनशीलता, सामाजिक सजगता इन सभी तत्वों का अनूठा समाहार उनके समीक्षा ग्रंथों में उपलब्ध है। वे साहित्य में सर्वहारा वर्ग के चित्रण पर अधिक जोर देते है। उनकी विचारधारा में काव्यशास्त्र की परंपरागत मान्यताओं के लिए कोई स्थान नहीं है। वे रस तथा अलंकार विषयक प्राचीन मान्यताओं के विरुद्ध है। साहित्यिक परंपरा का मूल्यांकन करते हुए रचनाकार के सामाजिक दृष्टिकोण पर बल देना ही उनकी समीक्षा शैली की केंद्रीय विशेषता है। उनकी समीक्षा शैली में उदाहरण विद्यमान रहते हैं। जिससे उनकी आलोचना सशक्त हो जाती है। उनके भीतर स्थित विद्वता, भाषाधिकार, प्रमाण देने की आदत, वैज्ञानिक दृष्टि, निष्पक्षता ने ही उन्हें सफल आलोचक बनाया है। वर्तमान में धनंजय वर्मा का आलोचना कर्म रामविलास शर्मा के करीब है परंतु फिर भी वे मार्क्सवादी नहीं है। उनकी आलोचना व्यावहारिक पक्ष को लेकर होती है। जिसमें समाज का पीड़ित वर्ग न्याय की तलाश करता है।

डॉ. नामवरसिंह की समीक्षा समाजवादी जीवन दृष्टि एवं नई कविता के भावमय समन्वय पर आधारित हैं। इसलिए इन्हें प्रगतिवादी आलोचक भी कहते हैं। ''इनकी मार्क्सवादी दृष्टि ऐतिहासिक दृष्टि के साथ वागर्थ प्रतिपत्ति की मूल्यवान आस्था भी अभिन्न रुप से जुड़ी हुई है। प्रगतिवादी आलोचकों में महत्वपूर्ण विशेषता केवल इन्हीं में लक्षित होती है। वे इतिहास को किसी रचना के भीतर समझने के पक्षपाती है। रचनाधर्मिता का संश्लेषण, ऐतिहासिक दृष्टि तथा वागर्थ प्रतिपत्ति इनकी समीक्षा का मूल सूत्र कहे जा सकते है।''[11] डॉ. नामवरसिंह जब अपने सांस्कृतिक, पश्चिमी और मार्क्सवादी चिंतन के साथ यदि किसी रचना, विधा, साहित्य पर विमर्श करते हैं तो वह विमर्श उस रचना का समग्र प्रत्याख्यान होता है। उनकी आलोचना आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता के मानकों या भारतीय सिद्धांतशास्त्र को ध्यान में रखकर होती है। डॉ. नामवरसिंह अपनी पुस्तक 'वाद, विवाद और संवाद' में एक महत्वपूर्ण वाक्य कहते हैं – ''आलोचना उनकी कोख से ही आलोचनात्मक रही है।''[12] उनकी दृष्टि की मौलिकता,

वैचारिक संघर्ष, आलोचना की सर्जनात्मक भाषा, सुस्पष्टता एवं पारदर्शी विवेचन द्वारा ही उन्होंने आलोचना को नई दिशा दी, नया आयाम दिया।

डॉ. प्रभाकर क्षोत्रिय हिन्दी के ऐसे आलोचक है जिसने हिन्दी को हिन्दी साहित्य के जरिये और हिन्दी आलोचनात्मक परंपरा के जरिये ही आलोचना कर्म को प्रतिष्ठित किया। उनकी आलोचना पद्धति संस्कृत की सौंदर्यवादी और सिद्धांतवादी पृष्ठभूमि पर आधारित है। ''रुप, रस, छंद, अलंकार, बिंब, प्रतीक, रेटरिक आदि की भी एक गूढ अन्तः प्रकृति है और साथ प्राध्यापकीय मानस की विराट भावात्मक संज्ञा है।''[13] उनके आलोचना कर्म में हिन्दी की अस्मिता प्रकट होती है। इसलिए उन्हें पश्चिमी मानकों या संस्कृत की किसी रीतिबद्ध प्रणाली का आलोचक न मानकर हिन्दी में हिन्दी आलोचना पाठ की स्थापना का आलोचक कहना ही उचित होगा।

रमेशचंद्र शाह के आलोचना कर्म में संस्कृति और दर्शन पश्चिमी साहित्य की अन्वेषणात्मक और विवेचनात्मक निर्भावुकता है। जो रचना सर्जक और आलोचक के बीच किसी भी स्तर पर उन्हें सेंटीमेंटल नहीं बनने देती। वे चाहे छायावाद पर लिखे या किसी अन्य विषय पर या किसी भी विधा पर वे दार्शनिक गूढता की माँग करते हैं। एक प्रकार का सौंदर्यात्मक बहाव रचते हैं। रचना के शब्दशील की व्याख्या न करके उसकी अंतर्निहित शक्ति या कमजोरी को बाहर लाते हैं और मूल रचना, आलोचना और सर्जक तीनों को एक साथ जोड़कर पढ़ने का आग्रह करते हैं।''[14] वे न तो हिन्दी के किसी रीतिबद्धता के पोषक है न आधुनिकता के उन्माद से ग्रस्त और न उत्तर आधुनिकता के आतंक से त्रस्त है। वे किसी रचना के रुप या वस्तु में नहीं बल्कि उसे सौंदर्य, संवेग और विचार वस्तु के रुप में देखते हैं।

अशोक वाजपेयी हिन्दी आलोचना के नए शिल्पकार है। उन्होंने हिन्दी की तमाम जड़ प्रणालियों को एक साथ उखाड़ फेका। ''उन्होंने सराहना की सदाशयता का मोह त्यागा, विचारधारा या वर्गगत पसंदगियों को भी तमाम आग्रह नकारे और इस प्रकार उन्होंने हर एक प्रचलित रुप के विरुद्ध आक्रमण कर दिया, जो हिन्दी आलोचना को मुक्त नहीं होने दे रही थी।''[15] उन्होंने सर्जक, उसकी सर्जना, आलोचना को नकारा जिनमें जड़ता के अनेक प्रतिबंध दिखाई दिए। उन्होंने परंपरा, पृष्ठभूमियों और रीतिगत भूमियों पर आलोचना का जो सृजनात्मक कर्म या उसे मुक्त किया। उन्होंने

वामपंथी, दक्षिणपंथी, मार्क्सवादी, भोगवादी, सिद्धांतप्रिय, सराहानाप्रिय, आस्वाद आदि सभी कथित मानकों की धज्जियाँ उड़ाई। हिन्दी आलोचना क्षेत्र में नयी भाषा, नयी शैली, नयी ऊर्जा और नया शिल्प अशोक वाजपेयी की देन है। उनका मानना था कि हिन्दी आलोचना के पास न तो अभी तक ज्ञान का वर्चस्व है न अध्ययन का गांभीर्य, न अन्वेषण और शोध की वाजिब दृष्टि। उन्होंने पत्रिकाई आलोचना का नया शिल्प रचा। व्याख्यात्मक आलोचना में कुछ हद तक निर्मल वर्मा और डॉ. नामवर सिंह दोनों की ध्वनियों के करीब नजर आए परंतु अपना स्वतंत्र अस्तित्व कायम रखा। उनकी आक्रमकता ने ही आलोचना को आलोचना होने का रुतबा दिलाया।

वर्तमान संदर्भ में शुद्ध आलोचना कर्म करने वाले आयोजक कम है। फिर भी अशोक वाजपेयी, रमेशचंद्र शाह, डॉ. नामवरसिंह जैसे आलोचक निरंतर आलोचना कर्म करने जा रहे हैं। नामवर सिंह की 'दूसरी परंपरा की खोज', रमेशचंद्र शाह की 'छायावाद की प्रासंगिकता', अशोक वाजपेयी की 'फिलहाल', प्रभाकर क्षेत्रिय की कविता की 'तीसरी आँख', 'संवाद' और 'कालयात्री' जैसी रचना हिन्दी आलोचना क्षेत्र में एक सशक्त हस्ताक्षर माना जा सकता है। इन सभी आलोचकों में जिन आलोचकों के पास भारतीय और पश्चिमी दोनों दृष्टियों की उपयुक्त समझ थी, वे बेहतर आलोचक माने गए। नंददुलारे वाजपेयी, रामविलास शर्मा तो इस दृष्टि से श्रेष्ठ आलोचक थे ही लेकिन रमेशचंद्र शाह, अशोक वाजपेयी, प्रभाकर क्षोत्रिय जैसे आलोचकों ने भी अपना स्थान बनाया। जो आलोचना आचार्य रामचंद्र शुक्ल के समय थी, वैसी ही अब है बदला तो केवल भाषा का रुप। यही कारण है, कि हिन्दी आलोचना में जड़ता अधिक है और गतिशीलता या प्रयोगशीलता का अभाव है। नये आलोचकों को इस चुनौती को स्वीकार कर इस स्थिति को बदलना होगा। उनको अपनी सृजनशीलता को बाहरी प्रभाव से दूर कर अपनी श्रेष्ठता को आँकना चाहिए। जिससे वे साहित्यग्राही समाज रचकर राष्ट्रीय स्तर के आलोचक निर्माण कर सके।

संदर्भ :–

1. *आलोचना– समय और साहित्य, रमेश दवे, पृ. 187*
2. *हिन्दी आलोचना की बींसवी सदी (आलोचना), डॉ. निर्मला जैन, पृ.20*
3. *आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की आलोचना दृष्टि, चंद्रदेव यादव, पृ.35*

4. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की आलोचना दृष्टि, चंद्रदेव यादव, पृ. 36
5. चिंतामणीः भाग दो रामचंद्र शुक्ल, पृ.309
6. नया साहित्य : नये प्रश्न, नंददुलारे बाजपेयी, पृ.3
7. विचार और वितर्क : हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ.96
8. कल्पलता, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ.194
9. हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, डॉ. शिवकुमार शर्मा, पृ. 675
10. हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, डॉ. शिवकुमार शर्मा, वृ.674
11. हिन्दी साहित्य युग एवं प्रवृत्तियाँ, डॉ. शिवकुमार शर्मा, पृ.676
12. आलोचना समय और साहित्य, रमेश दवे, पृ. 189
13. आलोचना समय और साहित्य, रमेश दवे, पृ.86
14. आलोचना समय और सहित्य, रमेश दवे, पृ.86
15. आलोचना समय और साहित्य, रमेश दवे, पृ. 86–87

डॉ. सुमेध पानाचंद नागदेवे
पी.डब्ल्यु.एस.कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय
कामठी मार्ग, नागपुर
मो. 9921286071